प्रवचन नं. १४२ श्लोक-४२-४४ दिनाङ्क २१-११-१९७८, मंगलवार
कार्तिक कृष्ण ७, वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्री समयसार, ६८ गाथा के कलश ४२ वाँ (अन्तिम है)

चैतन्यलक्षण सर्व जीवों में व्यापता होने से (अव्याप्तिदोष से रहित है,)... यहाँ से है। क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा जो है, वह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं, वह राग है, उनसे आत्मा जानने में नहीं आता। आत्मा तो चैतन्यलक्षण है, वह ज्ञानस्वभाव है, तो ज्ञानस्वभाव की परिणति से वह आत्मा जानने में आता है। सूक्ष्म बात है।

यह देह है-जड़, वाणी है, वह भी जड़ है परन्तु अन्दर में व्रत, भक्ति, पूजा, आदि का भाव, वह भी राग है, जड़ है, अचेतन है, वह पुद्गल है—यहाँ तो ऐसा कहा है। आहाहा! यह आत्मा तो ज्ञानस्वरूपी चैतन्यमूर्ति प्रभु, यह तो ज्ञान के लक्षण से-ज्ञान की परिणति से द्रव्य का लक्ष्य करे, तब अनुभव होता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है प्रभु!

इस शरीर की क्रिया से तो प्रभु-आत्मा भिन्न है परन्तु यह शुभ-अशुभभाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति पूजा के भाव पुण्य - दोनों पुद्गल हैं, (ऐसा) यहाँ तो कहते हैं। क्योंकि चैतन्य की प्रत्येक अवस्था में वे नहीं रहते। आहाहा! कठिन बात है। आहाहा! यह चैतन्यलक्षण आया न! **चैतन्यलक्षण सर्व जीवों में व्यापता होने से...** जानन.. जानन... जानन...। जो ज्ञानपर्याय-जो जानन लक्षण है, वह द्रव्य का लक्ष्य करे तो (आत्मा) अनुभव में आता है, तो सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन जिसे जिनेश्वरदेव-परमेश्वर 'समकित' कहते हैं।

यह सम्यग्दर्शन किस प्रकार होता है ? कि इस चैतन्य लक्षण से आत्मा को लक्षित करे, अनुभव करे तो उसे समकित होता है। व्रत, तप, और भक्ति या पूजा के भाव सब राग हैं, उस राग से आत्मा प्राप्त नहीं होता, उससे तो बन्ध होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ राग को तो पुद्गल कहा गया है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त का श्लोक (गाथायें) है, उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने की है। हजार वर्ष पहले दिगम्बर सन्त हुए, वे ऐसा प्रसिद्ध करते हैं कि प्रभु! तू तो ऐसा है—ज्ञान से (ज्ञात हो) ज्ञान, ज्ञान... ज्ञान, वह

ज्ञान आत्मा की प्रत्येक अवस्था में रहता है। इस कारण ज्ञान लक्षण से आत्मा अन्दर में अनुभव में आता है। आहाहा!

जितना भगवान का स्मरण, व्रत का, तप का, भक्ति का, उपवास का, यात्रा का भाव (है वह) सब राग है, सब पुद्गल है। आहाहा! यह बात है! वह जीव नहीं। भगवान उसे आत्मा नहीं कहते, उसे तो पुद्गल कहते हैं। आहाहा! क्या करे? बहुत अन्तर!

यह तो चैतन्य लक्षण द्वारा-सर्व जीवों में यह लक्षण है, राग और वह कोई उसका लक्षण नहीं है। आहाहा! उसकी जाति नहीं है-चैतन्य की जाति नहीं है; राग तो कुजात-अजीव है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम भी अजीव-राग-विकल्प अजीव है। यह बात है! समस्त ही व्यवहार अजीव है। आहाहा!

भगवान आत्मा तो राग से भिन्न, चैतन्य ज्ञानलक्षण से-ज्ञान की वर्तमान परिणति से ज्ञायक त्रिकाली जीव जानने में आता है। आहाहा! यह बात है। जगत को कठिन (लगती है)। **और जीव के अतिरिक्त किसी अन्य द्रव्य में व्यापता न होने से...** आत्मा के अतिरिक्त ज्ञान दूसरे किसी द्रव्य में नहीं है। आहाहा!

शरीर में (चैतन्यलक्षण) नहीं है, वाणी में नहीं है, धर्मास्ति (काय) में नहीं है, अधर्मास्ति (काय) में नहीं है, आकाश और काल तथा पुद्गल में नहीं है और राग आदि भाव में भी नहीं है। आहाहा! यहाँ यह जीव का अधिकार पूर्ण होता है तो उसमें इस पूर्ण शक्ति का वर्णन करते हैं। आहाहा! **अतिव्याप्तिदोष से रहित है...** क्योंकि अन्य द्रव्यों में ऐसा जानन... जानन... जानन... जानन... जो स्वभाव, वह आत्मा के अतिरिक्त दूसरे द्रव्यों में नहीं है; आहाहा! इस कारण वह अतिव्याप्तिदोष से रहित है। **और वह प्रगट है;...** क्या कहते हैं? ज्ञान, त्रिकाली प्रभु भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी (ज्ञान की) ज्योति, उसकी पर्याय में ज्ञान प्रगट है, वह ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा है। चैतन्य ब्रह्म, सर्वज्ञ स्वरूपी प्रभु आत्मा है। आहाहा! यह उसकी पर्याय में ज्ञान की अवस्था प्रगट है। उसका लक्षण—ज्ञान का लक्षण वह ज्ञानलक्षण पर्याय में प्रगट है। अब ऐसी बातें!

मुमुक्षु : अभी....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी; त्रिकाल ज्ञान की पर्याय प्रगट है; राग हो तो राग भिन्न है,

शरीर भिन्न है और राग को जाननेवाली पर्याय है, वह ज्ञानलक्षण प्रगट है। आहाहा! मार्ग अलौकिक है!

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

मुनिव्रत-पंच महाव्रत नग्नपना अनन्त बार लिया, अट्ठाईस मूलगुण जो साधु के कहे जाते हैं, वे अनन्त बार लिये, वह तो राग है; वह (कहीं) जीव नहीं है, वह जीव का स्वरूप नहीं है। आहाहा! मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो। —यह पंच महाव्रत है, अट्ठाईस मूलगुण (है), वह राग है, आकुलता है, दुःख है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो पुद्गल कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल है, दुःख है, आकुलता है, जड़ है, अजीव है। भगवान आत्मा चैतन्यलक्षण से जो लक्षित होता है, ऐसा कभी किया नहीं। आहाहा! ऐसा दिगम्बर साधु भी अनन्त बार हुआ, नग्नपना अनन्त बार, अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार पालन किये, वह तो राग है, वह तो अजीव है। आहाहा! वह तो पुद्गल है। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यलक्षण से लक्षित है, ऐसा (समझ में) कभी नहीं लिया।

जानन... जानन जो पर्याय प्रगट है... आनन्द की पर्याय तो प्रगट नहीं, आनन्द तो अन्दर स्वभाव में शक्तिरूप आनन्द है परन्तु ज्ञान की पर्याय तो प्रगट है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय द्वारा द्रव्य का लक्ष्य करने से द्रव्य प्रगट होता है - यह कल आ गया है-कल आ गया था। समझ में आया? आहाहा!

व्यक्तं है न? यह चैतन्यलक्षण प्रगट है और उसमें जीव के यथार्थस्वरूप को प्रगट किया है। कल आया था, कल। आहाहा! सूक्ष्म बात है प्रभु! यह भगवान आत्मा जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा... वह अन्यमतियों में यह जो आत्मा-आत्मा करते हैं, वैसा आत्मा नहीं। यहाँ तो परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव जिसे आत्मा कहते हैं, ऐसे आत्मा की ज्ञान की पर्याय प्रगट है, उस पर्याय द्वारा अन्दर में लक्ष्य करने से आत्मा है, ऐसा ज्ञान में प्रगट भिन्न दिखाई देता है। आहाहा! समझ में आया?

प्रगट, जो रागादि प्रगट है परन्तु वह तो पुद्गल है-जड़ है। यहाँ तो चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा की पर्याय में-अवस्था में चैतन्य का अंश व्यक्त / प्रगट है। आहाहा! वह चैतन्य का अंश जो प्रगट है, उसके द्वारा अन्तरद्रव्य में लक्ष्य करने से-त्रिकाली ज्ञायकभाव का लक्ष्य करने से, जो पर्याय प्रगट है, उसके द्वारा लक्ष्य करने से अन्तर में वस्तु प्रगट होती है। ज्ञान की पर्याय में, शक्तिरूप गुप्त भगवान है, वह ज्ञान में प्रगट दिखता है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म! अपूर्व मार्ग है। ऐसा (मार्ग) कहीं, किसी पन्थ में, किसी मार्ग में यह मार्ग नहीं है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर सर्वज्ञ को वीतरागदशा पूर्ण हुई तो वह (दशा) आयी कहाँ से? अन्तर में सर्वज्ञस्वभाव और वीतरागस्वभाव भरा है, उसमें से वह पर्याय आती है। आहाहा! किसी राग की क्रिया—महाव्रत की, दया, दान की, उपवास करना, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, वह सब (भाव) तो राग है। आहाहा! उस राग में से सर्वज्ञता और वीतरागता नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात है। पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

उस राग में से वीतरागता नहीं आती और राग में से सर्वज्ञता नहीं आती। सर्वज्ञ एक समय की पर्याय में से सर्वज्ञता नहीं आती। आहाहा! वह सर्वज्ञ पर्याय जो वर्तमान अवस्था प्रगट जो ज्ञानलक्षण है, वह त्रिकाली ज्ञायक को-ध्रुव को पकड़े, तब उसमें सर्वज्ञस्वभाव है और वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान है, तब उसकी दृष्टि जब हुई कि मैं तो ज्ञायक हूँ -चिदानन्द शुद्ध पूर्ण हूँ, पर्याय ऐसी प्रतीति करती है। आहाहा! वर्तमान ज्ञान की पर्याय ऐसी प्रतीति करती है कि मैं तो पूर्ण शुद्ध अखण्ड आनन्दकन्द हूँ, आहाहा! तब उस पर्याय में, शक्तिरूप गुप्त भगवान था,... पर्याय की अपेक्षा से गुप्त था, उस पर्याय की दृष्टि वहाँ गयी तो गुप्त था, वह प्रगट हो गया। आहाहा! ऐसी बातें हैं बापू! बहुत कठिन बात है। आहाहा! यह तो भाषा तो बहुत सादी परन्तु अब भाषा, भाषा से निकलती है! आहाहा! ऐसा स्वरूप, भगवान जिनेश्वर ऐसा फरमाते हैं, वह ये सन्त-दिगम्बर सन्त-केवलज्ञान के मार्गानुसारी, आहाहा! वे मार्ग को प्रसिद्ध / प्रगट करते हैं।

यह यहाँ तक आया है कि **इसलिए उसी का आश्रय ग्रहण करने से...** किसका? कि जाननलक्षण जो प्रगट है, उसे ग्रहण करने से अथवा उसे अन्तर में (स्वसन्मुख) ले

जाने से, आहाहा!—यहाँ तो प्रगट है, उसे ग्रहण करने से। उस राग को ग्रहण नहीं करना। समझ में आया?

राग को और निमित्त को ग्रहण नहीं करना। जो ज्ञानपर्याय प्रगट लक्षण है, उससे ग्रहण करके, आहाहा! **जीव के यथार्थ स्वरूप का ग्रहण हो सकता है।** आहाहा! कितना? यह पण्डित जयचन्दजी! क्या कहते हैं कि राग और इन निमित्तों को ग्रहण करने से वह लक्षण आत्मा के हैं नहीं, उनसे कोई आत्मा प्राप्त नहीं होता। वे तो जड़ हैं। आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा का प्रगट लक्षण जानन जो पर्याय में प्रगट-व्यक्त है, उसके द्वारा अन्दर व्यक्त को पकड़ने से—इसका अर्थ यह है कि उस ओर नजर का झुकाव करने से, ज्ञान की पर्याय को पकड़ने से अर्थात्? राग को पकड़ना छोड़कर, ज्ञान की पर्याय को पकड़ी तो तत्काल अन्दर में गया! आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा!

उसी का ग्रहण अर्थात् क्या? चैतन्य लक्षण, चैतन्य लक्षण का ग्रहण करने से-ऐसा कहा है। आहाहा! पर्याय कायम है न? कायम। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... पर्याय—ज्ञान की पर्याय तो कायम अनादि से और अनन्त है। आहाहा! परन्तु उस पर्याय को ग्रहण करने से... राग को नहीं, अतिव्याप्ति अमूर्त को नहीं। आहाहा!

राग अव्याप्ति है; अमूर्तपना अतिव्याप्ति है और चैतन्यलक्षण यथार्थ वस्तु व्याप्ति है। आहाहा! अरे प्रभु! मार्ग बहुत-सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है! और इस सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यर्थ है। यह व्रत, तप, भक्ति साधुपना, सब क्रिया सब संसार खाते है। आहाहा! यहाँ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने (जो) कहा, वह दिगम्बर सन्त मुनि जंगल में बसनेवाले कहते हैं।

प्रभु! एक बार सुन तो सही! तू है, तुझमें प्रत्येक अवस्था में व्याप्त हो तो वह ज्ञान है; राग प्रत्येक अवस्था में ज्ञात नहीं; इसीलिए वह तेरा स्वरूप / लक्षण नहीं है। आहाहा! तेरी ज्ञानपर्याय है, वह तो प्रत्येक अवस्था में व्याप्त है। आहाहा! इस कारण ज्ञान की पर्याय को (आत्मा का) लक्षण कहते हैं और उसे ग्रहण करने से... राग को नहीं, निमित्त को नहीं... ज्ञान की पर्याय को ग्रहण करने से दृष्टि वहाँ जाती है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! सुनना कठिन पड़े, लोग बाहर से कुछ का कुछ मानकर बैठे हैं। आहाहा!

इसलिए उसी का आश्रय ग्रहण करने से... अर्थात् ज्ञानलक्षण को लक्ष्य में लेने से और उससे लक्ष्य जो द्रव्य, उसके **यथार्थ स्वरूप का ग्रहण हो सकता है।** समझ में आया? आहाहा! कितनी सरस भाषा है, सादी (भाषा है) कहते हैं कि शरीर की क्रिया का लक्ष्य छोड़ दे, वह तो जड़ है। यह हलन-चलन तो जड़ की क्रिया है; अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव होते हैं, वे भी पुद्गल हैं जड़ हैं; तुझमें जो ज्ञान की पर्याय जो लक्षण प्रगट है, वह चैतन्यस्वभाव का लक्षण है तो तू उस लक्षण को ग्रहण करके अन्दर में जा, आहाहा! तो तेरा सर्वज्ञस्वरूप भगवान आत्मा चैतन्य के लक्षण से वह वस्तु व्याप्त हो जाती है, अर्थात् प्रगट होती है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ? वीतराग... वीतराग... वीतराग... आहाहा!

दूसरी भाषा से कहें तो यह चैतन्यलक्षण जो पर्याय है, यह रागवाली नहीं, यह विकारवाली नहीं। आहाहा! भले है तो पर्याय, परन्तु विकार नहीं, ऐसी निर्विकारी चैतन्य पर्याय से... पर्याय, आत्मा का शाश्वत् लक्षण होने से, उसे ग्रहण करने से जीव की प्राप्ति होती है। कहो, देवीलालजी! ऐसी बातें हैं बापू! आहाहा! यह वस्तु (अन्यत्र कहीं) सुनने (मिले ऐसी नहीं।) देखो, पण्डित जयचन्दजी ने...

मुमुक्षु : अभी तो मानसिक ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानसिक ज्ञान पर्याय, ज्ञान की पर्याय है, वह तो ज्ञान के गुण की पर्याय है, चिन्ता-विकल्प वह तो आत्मा में नहीं, वह तो (आत्मा से) दूर कर दिया। यहाँ तो ज्ञान की जो पर्याय है, वह उस चैतन्यद्रव्य का लक्षण है क्योंकि त्रिकाल-कायम ज्ञान की पर्याय-पर्यायज्ञान रहता है। राग इसका लक्षण नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति, राग तो बन्ध का कारण है, राग पुद्गल है। अर र! उसे छोड़कर, ज्ञान जो प्रगट है, भले पर्याय है परन्तु है तो ज्ञान; इस ज्ञान, आहाहा! इस ज्ञान की प्रगट पर्याय को... अरे! इसे ग्रहण करने से... यह कब ग्रहण (की है) इसने कभी (यह किया नहीं)। अनादि से राग की क्रिया - दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा राग है, यह करो, मन्दिर बनाओ, यह बनाओ, वह बनाओ, वह तो धूल है - पर है। आहाहा! समझ में आया? पण्डित जयचन्दजी ने भी, अन्दर आचार्य ने जो गाथा में कहा था-व्याप्त है न? व्यक्तं (लक्षण) उसे जीव का कहना

(कहकर) यथार्थस्वरूप को प्रगट किया है। है न अन्दर? कलश में कल आया था। वह योग्य, यह (लक्षण) प्रगट है। चैतन्य, तत्त्व का-जीव का लक्षण कहा वह योग्य है। योग्य है अर्थात् प्रगट है। दो श्लोक आये हैं, है श्लोक? आहाहा! ४२ श्लोक।

चैतन्यतत्त्व को जीव का लक्षण कहा, वह योग्य है। समुचित-सम्यक्त-यथावत् है और वह चैतन्यलक्षण प्रगट है। यह ४२, कलश नीचे है, नीचे की तीसरी लाईन। आहाहा! उस कलश में है, उसे यहाँ प्रगट करते हैं। आहाहा! है?

अतिव्याप्ति, अव्याप्ति दूषण से रहित चैतन्यतत्त्व को जीव का लक्षण कहा, वह योग्य है-उचित है क्योंकि वह चैतन्यलक्षण पर्याय में प्रगट है। एक बात और **व्यग्जितजीव -तत्त्मय** और उस लक्षण से जीवतत्त्व जो है, वह प्रगट होता है-ख्याल में, प्रगट वस्तु है (ऐसा) ख्याल में आता है। आहाहा! है या नहीं? ४२ वें कलश की अन्तिम तीन लाईनें-अन्तिम तीन लाईने हैं। आहाहा! कल (स्पष्टीकरण) बहुत विस्तार से आ गया था। आज (वापस) उसका यह विस्तार है, कल आया था, उसका ही यह विस्तार है। आहाहा!

मुमुक्षु : लक्ष्य को पकड़े तो लक्षण कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तब पकड़े, लक्षण तो पकड़े तो लक्ष्य में जाये-जिसका लक्षण है, उसे पकड़े तो लक्ष्य में जाये! इस राग को तो अनादि से पकड़ा है, कहते हैं आहाहा! ऐसा राग-पंच महाव्रत का भी अनन्त बार लिया है। अनन्त बार नग्न-मुनि (हुआ) अनन्त बार हुआ है और पंच महाव्रत की क्रिया... प्राण जाये तो भी उसके लिये बनाया हुआ आहार न ले! चौका बनाकर बनावै वह तो न ले, ऐसी राग की क्रिया तो इसने अनन्त बार की है। समझ में आया? आहाहा!

यह तो चौका बनाते हैं और (आहार) लेते हैं, वह तो सच्चा व्यवहार ही नहीं है। आहाहा! ऐसी राग की क्रिया... इसके लिये पानी की बूँद (प्रासुक जल) बनायी हो तो ले नहीं-ऐसी-ऐसी राग की क्रिया इसने अनन्त बार की। आहाहा! परन्तु अन्तर चैतन्यलक्षण से लक्षित, चैतन्य यह चेतन का लक्षण है। यह राग, उसका लक्षण नहीं। ऐसा चैतन्यलक्षण है, उसे ग्रहण करके चैतन्य का ग्रहण करना, वह वस्तु का स्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले लक्षण ग्रहण करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; राग से भिन्न चैतन्यलक्षण पकड़े तो वह लक्षण द्रव्य का है, तो वहाँ दृष्टि जाये। अरे! वीतरागमार्ग में ऐसी बातें, बापू! आहाहा! जिनेश्वर त्रिलोकनाथ (तीर्थंकरदेव) ऐसा फरमाते हैं, वह सन्त फरमाते हैं-दिगम्बर सन्त! आहाहा!

मुमुक्षु : सच्चा लक्षण तो अनुभव हो तब कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लक्षण प्रगट हुआ, तब अन्तर में गया, तब इसे अनुभव हुआ! आहाहा! इसीलिए कहा न, उसका स्पष्टीकरण किया है। जो चैतन्यलक्षण है, वह उचित है। पर्याय में लक्षण है, वह उचित है-यहाँ ऐसा कहना है न! और वह चैतन्यलक्षण प्रगट है। चैतन्यलक्षण जो जाननपर्याय है, वह प्रगट है और उसने जीव के यथार्थ स्वरूप को प्रगट किया है। कल तो बहुत बात आ गयी थी। आहाहा!

भगवान आत्मा की चैतन्य पर्याय जो जानन... जानन... जानन..., वह तो तीनों ही काल में जानन पर्याय रहती है; इसीलिए उसका यह लक्षण है। राग उसका लक्षण नहीं, शरीर की क्रिया उसका लक्षण नहीं, वह तो पुद्गल का लक्षण है। आहाहा! और यह चैतन्यलक्षण... राग से भिन्न सूक्ष्म पर्याय पकड़ना, वह कहीं साधारण बात है!? आहाहा!

इन्द्रियों के विषय बन्द हो जायें और राग की ओर का लक्ष्य छूट जाये! यह क्या है? आहाहा! यह चैतन्यलक्षण जो पर्याय में है, वहाँ लक्ष्य हो जाये, दृष्टि वहाँ ग्रहण कर ले। आहाहा! तो उससे चैतन्य प्रगट होता है। जिसका लक्षण है, उस लक्षण को प्रगट करने से-लक्षण जिसका है, ऐसा लक्ष्य प्रगट हो जाता है। बात तो ऐसी है प्रभु! आहाहा! यह बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है, आहाहा! कहीं यह बात नहीं है।

मुमुक्षु : लक्ष्य-लक्षण एकसाथ प्रगट होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्षण प्रगटा तब वह लक्ष्य में अन्दर गया (क्योंकि) जिसका लक्षण है, उसका लक्षण प्रगटा, तब उसमें गया। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों का काल एक ही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में समय एक ही है परन्तु भाषा में तो कैसे कहना? (भाषा में तो भेद पड़ते हैं) यह... यह... चैतन्य है, राग नहीं। निर्मल पर्याय, हों! ऐसा लक्ष्य गया

तो वहाँ उस लक्ष्य में द्रव्य आ गया लक्ष्य में! आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! क्या श्लोक! क्या श्लोक!! (अलौकिक)।

यह श्वेताम्बर के ४५ सूत्र पढ़े-करोड़ों श्लोक पढ़े परन्तु यह बात उनमें नहीं निकलती। आहाहा! हमने तो सब देखे हैं न! करोड़ों श्लोक श्वेताम्बर के देखे हैं। आहाहा! यह चीज़... यह चीज़ (उसमें नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : (श्वेताम्बर के) करोड़ों श्लोकों में राग पुद्गल है, ऐसा नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ आया न पुद्गल! उनमें कहीं नहीं आया। वे तो शुभयोग से कल्याण भी होता है और बन्ध भी होता है दोनों (बात) आती है। तत्पश्चात् आनन्दघनजी ने थोड़ा पकड़ा है परन्तु वह सब बाद में, मूल चीज़ तो... सूक्ष्म बात है बापू! आनन्दघनजी ने सूत्र और टीका को मान्य रखा है, ऐसी बात है।

मुमुक्षु : श्वेताम्बरपना कायम रखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कायम रखा है! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह श्वेताम्बर मत है, वह गृहीत मिथ्यात्व से उत्पन्न हुआ है। दिगम्बर में से दो हजार वर्ष पहले निकला है, दुष्काल- बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा तो वे स्वभाव से भ्रष्ट बनकर, नये शास्त्र बनाये। उसमें से ये सब ले लिया। यह बात उनमें नहीं है। अब कोई (कोई) अभी जरा कहते हैं, दूसरों का सुनकर-यहाँ का / दिगम्बर का सुनकर (कहते हैं) परन्तु यह चीज़ वहाँ नहीं है। आहाहा! वहाँ तो व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, व्यवहार भी साधन और मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहते हैं। अभी तो यहाँ सम्प्रदाय में-दिगम्बर सम्प्रदाय में भी ऐसा कहते हैं, वह श्वेताम्बर का प्रकार हो गया है। व्रत, तप, भक्ति, पूजा बहुत करो, (वह) साधन है, उससे धर्म होगा। (उससे) साध्य-निश्चय होगा। (यह बात) बिलकुल झूठ है क्योंकि उन सब (भावों को) यहाँ तो पुद्गल कहा है न! (कहा कि) पुद्गल के (भाव) हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने (कहा है)। आहाहा!

ये (दिगम्बर सन्त) कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले (संवत् ४९ में) हुए हैं। वे भगवान (सीमन्धरस्वामी के) पास गये थे, वहाँ (महाविदेह में) सीमन्धर प्रभु (विराजमान हैं) वहाँ आठ दिन रहे और (वहाँ से आकर) ये शास्त्र बनाये! ओहोहो! राग इसका लक्षण

नहीं, क्योंकि रागभाव प्रत्येक अवस्था में नहीं रहता (और) शरीर आदि जड़ इसका लक्षण नहीं क्योंकि (जीव की) प्रत्येक अवस्था में शरीर नहीं रहता। आहाहा! यह ५० से ५५ गाथा में कहा है न कि रंग, राग से भिन्न, भेद से भिन्न... रंग अर्थात् गंध, रस, स्पर्श, संहनन, संस्थान से भिन्न, परन्तु राग से भिन्न और रंग-राग से भिन्न और भेद से भिन्न! आहाहा! भगवान ने ५० से ५५ गाथा में ऐसा कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त... आहाहा! जगत को जाहिर करते हैं कि परमात्मा का यह फरमान है, भाई! आहाहा! तेरा लक्ष्य जो राग और निमित्त पर है, वह कहीं चैतन्य का लक्षण नहीं है। आहाहा! वहाँ से वह लक्ष्य छोड़ दे! आहाहा! जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जो दशा, वह चैतन्य का लक्षण है, तो उसे पकड़ / ग्रहण कर और उससे चैतन्य (तत्त्व) प्रगट हो जाता है। जिसका लक्षण है, लक्षण को पकड़ा तो चैतन्य प्रगट हो जाता है। वहाँ (लक्षण में) लक्ष्य कर, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है बापू! क्या हो? अभी तो इतने झगड़े खड़े हुए हैं। आहाहा! कोई कहे यह एकान्त है, अमुक है। व्यवहार से भी होता है ऐसा मानते नहीं! परन्तु व्यवहार पुद्गल है, कहाँ से माने? सुन तो सही।

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (ने) व्यवहार क्रियाकाण्ड को पुद्गल कहा! तेरे छह-छह महीने के उपवास किये हों, वह तो राग की क्रिया है, वह कहाँ आत्मा है? आहाहा! लाख-करोड़ सम्मेदशिखर की यात्रा कर और गिरनार की, वह तो शुभराग है। परलक्ष्यी (भाव) वह तो राग है, वह कहीं चैतन्यवस्तु नहीं है। आहाहा!

कलश-४३

अब, 'जब कि ऐसे लक्षण से जीव प्रगट है, तब भी अज्ञानीजनों को उसका अज्ञान क्यों रहता है?'—इस प्रकार आचार्यदेव आश्चर्य तथा खेद प्रगट करते हैं:—

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसंतम्।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति।।४३।।

श्लोकार्थ - [इति लक्षणतः] यों पूर्वोक्त भिन्न लक्षण के कारण [जीवात् अजीवम् विभिन्नं] जीव से अजीव भिन्न है [स्वयम् उल्लसन्तम्] उसे (अजीव को) अपने आप ही (स्वतन्त्रपने, जीव से भिन्नपने) विलसित होता हुआ - परिणमित होता हुआ [ज्ञानी जनः] ज्ञानीजन, [अनुभवति] अनुभव करते हैं, [तत्] तथापि [अज्ञानिनः] अज्ञानी को [निरवधि-प्रविजृम्भितः अयं मोहः तु] अमर्यादरूप से फैला हुआ यह मोह (अर्थात् स्वपर के एकत्व की भ्रान्ति) [कथम् नानटीति] क्यों नाचता है — [अहो बत] यह हमें महा आश्चर्य और खेद है!॥४३॥

कलश- ४३ पर प्रवचन

अब, 'जब कि ऐसे लक्षण से जीव प्रगट है, तब भी अज्ञानीजनों को उसका अज्ञान क्यों रहता है ?' आहाहा! अब क्या कहते हैं ? कि यह भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति -ज्ञानानन्दस्वरूप, इसकी पर्याय में चैतन्यलक्षण तो प्रगट है, तथापि अज्ञानी उसे क्यों नहीं जानता ? और राग तथा पुण्य की क्रिया को—दया, दान, व्रतादि को धर्म मानता है, क्या हुआ तेरा अज्ञान ? आहाहा! ऐसी बातें प्रभु! **इस प्रकार आचार्यदेव आश्चर्य तथा खेद प्रगट करते हैं** - ४३ है न!

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसंतम्।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति।।४३।।

आहाहा! **श्लोकार्थ - इति लक्षणतः यों पूर्वोक्त भिन्न लक्षण के कारण...** क्या कहा ? राग नहीं, पुण्य-पाप के भाव नहीं, शरीर, वाणी, रंग नहीं—रंग और राग से भिन्न भगवान, ऐसे **भिन्न लक्षण के कारण...** आहाहा! भगवान का-चैतन्यप्रभु तो जानन चैतन्यलक्षण है, उस लक्षण के कारण से **'जीवात् अजीवम् विभिन्नं' जीव से अजीव भिन्न है...** चैतन्यलक्षण से लक्षित प्रभु है, इस कारण जीव और अजीव भिन्न है। आहाहा! इसलिए **(अजीव को) अपने आप ही (स्वतन्त्रपने, जीव से भिन्नपने) विलसित होता**

हुआ... क्या कहते हैं? अपने आप ही (स्वरूप से) जीव से भिन्नरूप से (विलसता परिणमता) धर्मी जीव को... आहाहा! अपने ज्ञानलक्षण से लक्षित अनुभव करने से अजीव-रागादि तो भिन्न हो जाते हैं, भिन्न ही (वे) रहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात भाई! अनन्त काल से कोई एक सेकेण्ड धर्म किया नहीं कभी! आहाहा! वह चीज़ कोई अलौकिक होगी न! आहाहा! और उसका फल भी अलौकिक है न! आहाहा!

यों पूर्वोक्त भिन्न लक्षण के कारण... इति लक्षणतः कहा न! राग को पर के लक्षण से भिन्न लक्षण के कारण **जीव से अजीव भिन्न है...** भगवान ज्ञानलक्षण से लक्षित है तो अजीव, अजीव रागादि, वह भिन्न है। **'स्वयम् उल्लसन्तम्' उसे (अजीव को) अपने आप ही...** रागादि **अपने आप ही (स्वतन्त्रपने, जीव से भिन्नपने)...** आहाहा! राग, दया, दान, व्रत के विकल्प हैं, वे ज्ञानी को स्वयं भिन्न भासित होते हैं। अपने ज्ञानलक्षण से अनुभव करने से वे रागादि लक्षण भिन्न रहते हैं, आत्मा में आते नहीं। आहाहा! आहाहा! **(स्वतन्त्रपने, जीव से भिन्नपने) विलसित होता हुआ - परिणमित होता हुआ ज्ञानीजन, भिन्न अनुभव करते हैं,...** समझ में आया? जीव से अजीव का भिन्न (रूप) अनुभव करते हैं। चैतन्यलक्षण से लक्षित भगवान का अनुभव करने से रागादि क्रियाओं को भिन्न जानते हैं। आहाहा! 'जाना हुआ प्रयोजनवान' यह आया, यह शैली ली है। भिन्न जानते हैं, यह शैली ली है।

चैतन्यलक्षण... ये दूसरे (जो लक्षण) अव्याप्ति, अतिव्याप्ति लक्षणों से भिन्न, उस चैतन्यलक्षण से भगवान जानने में आया। तो धर्मी जीव को चैतन्यलक्षण से आत्मा का अनुभव होने से अजीव के भाव को भिन्न अनुभव करता है, वे अपने अनुभव में नहीं आते। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो... चैतन्यलक्षण से लक्षित भगवान का अनुभव करने से, जो राग बाकी है, वह भिन्न अनुभव में अर्थात् भिन्नरूप से-भिन्न जानने में आता है। 'जाना हुआ प्रयोजनवान' जो बारहवीं गाथा में कहा है। आहाहा! समझ में आया? भिन्न ज्ञान का भिन्न ज्ञान होता है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत कठिन, परमसत्य तो यह है भाई! आहाहा!

अब **ज्ञानीजन, अनुभव करते हैं, तथापि...** अरे रे! ऐसा होने पर भी-ज्ञान के लक्षण से अन्तर अनुभव आत्मा का होने पर भी, ज्ञानी को राग स्वतंत्ररूप से उसके कारण

से वहाँ उत्पन्न होता है, वह (राग) अपने अनुभव में नहीं आता, ऐसा वस्तु का स्वरूप है **तथापि अज्ञानी को 'निरवधि-प्रविजृम्भितः अयं मोहः तु'** आहाहा! **अमर्यादरूप से फैला हुआ यह मोह...** आहाहा! अरे! राग में मेरी चीज़ है और राग से लाभ हुआ, ऐसी एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व की है। आहाहा! **क्यों नाचता है...** है इसमें? ऐसा कहा न?— **निरवधि** अरे रे! मोह-राग मेरा है और राग से लाभ होता है, निरवधि-मर्यादारहित मोह है-माहमिथ्यात्व मोह है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वह **अमर्यादरूप से फैला हुआ यह मोह (अर्थात् स्व-पर के एकत्व की भ्रान्ति)... (क्यों नाचता है)।** चैतन्यलक्षण से लक्षित अनुभव में आनेवाला... अज्ञानी को अजीव भिन्न रहता है तो भी अज्ञानी को अजीव, आत्मा का है, राग आत्मा का है—ऐसी भ्रान्ति -मर्यादारहित मिथ्यात्व क्यों उत्पन्न होता है। आहाहा! है? **'कथम् नानटीति' क्यों नाचता है...** मोह क्यों होता है? परन्तु यहाँ तो कहते हैं वह नाचता है क्योंकि अज्ञानी नाच रहा है। क्योंकि मिथ्यात्व में-एकत्वबुद्धि है न! भगवान ने कहा-(हमें) महा आश्चर्य और खेद है। फिर कहते हैं कि वह तो नाचता है तो पुद्गल नाचे, जीव को (उसमें) क्या है? परन्तु यहाँ तो पहले अज्ञानी राग से एकत्व मानता है तो मिथ्यात्व से नाचता है। आहाहा!

राग तो ज्ञानी को भी आता है परन्तु वह राग पररूप से जानने में आता है, अपना है, ऐसा नहीं। आहाहा! स्व-पर की भ्रान्ति एकत्व (बुद्धि की) क्यों नाचती है? **यह हमें महा आश्चर्य है!** क्योंकि चैतन्यलक्षण से लक्ष्य प्रत्यक्ष प्रगट है, उसे छोड़कर राग की एकत्वबुद्धि में मोह क्यों नाचता है? क्यों परिणमता है? आहाहा!

अहो! **महा आश्चर्य और खेद है!** मुनि हैं न, जरा राग है तो खेद है। आहाहा! अब यह (अज्ञानी) क्या करता है? भगवान अन्दर चैतन्यलक्षण से लक्षित विराजमान है, उसे छोड़कर यह राग—दया, दान, व्रत, भक्ति का राग मेरा है, उससे मुझे लाभ होगा (ऐसा मानकर) नाचता है (परिणमता है) यह मिथ्यात्व क्यों नाचता है? आहाहा! आश्चर्य! ऐसी बात है।

जबकि ज्ञानी चैतन्यलक्षण का (लक्ष्य करके) चैतन्यलक्षण से (आत्मा का) अनुभव करता है तो अजीव भिन्न रह जाता है, तो यह अज्ञानी अजीव को एक मानकर मोह

में क्यों नाचता है ? अपने चैतन्यलक्षण से लक्षित आत्मा को क्यों भूल जाता है ? आहाहा ! यह तो बड़ा सिद्धान्त है-सिद्ध हुआ सिद्धान्त। आहाहा ! सिद्धान्त है। जिसमें सिद्धपद की प्राप्ति हो, वह सिद्धान्त है। समझ में आया ? इससे सिद्धान्त ऐसा सिद्ध (होता है कि) जिससे सिद्धपद की प्राप्ति हो, संसार की प्राप्ति हो। वह सिद्धान्त ही नहीं। आहाहा !

आचार्य हैं, दिगम्बर-सन्त हैं आनन्द के अनुभव की जिनकी मोहर-छाप पड़ी है-अतीन्द्रिय आनन्द मुनि को अर्थात् सच्चे सन्त तो हो उसे तो अतीन्द्रिय प्रचुर आनन्द (होता है) आनन्द की मोहर-छाप (जिनकी है) अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन वर्तता है, उन मुनि को थोड़ा राग है तो (मुनिराज कहते हैं कि) अरे, अज्ञानी को क्यों (राग नाचता है) ? अरे ऐसी चीज़ पड़ी है, चैतन्यलक्षण से लक्षित ! प्रगट चैतन्य होनेवाली चीज़ है, उसे छोड़कर यह राग मेरा है, राग लक्षण जीव का है (ऐसा) मानकर यह मोह में क्यों नाचता है ? कहो, हमें आश्चर्य होता है ! आहाहा ! चैतन्य-ज्ञानलक्षण से लक्षित, अनुभव में आनेवाला आत्मा, धर्मी को तो उसका अनुभव होता है, सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में ज्ञान से आत्मा जानने में आया, तब आत्मा का अनुभव होता है, राग का नहीं, राग भिन्न है। आहाहा ! यहाँ चौथे गुणस्थान से बात है।

यहाँ तो मुनि कहते हैं, छठे गुणस्थान में मुनि विराजते हैं, आनन्द में झूलते हैं, तो उन्हें विकल्प आया, ये (कलश) बनाये, उसमें कहते हैं कि अरे रे ! प्रभु ! यह तेरा आत्मा चैतन्यलक्षण से लक्षित प्रभु अन्दर विराजता है, वहाँ क्यों नहीं जाता और यह राग जो तेरी किसी अवस्था में... सकल अवस्था में व्याप्त नहीं रहता, किसी में है; ऐसे राग को पकड़कर अजीव का अनुभव क्यों करता है ? ऐसी बात है। ऐसा उपदेश ही सुनना कठिन पड़ता है। है ? वह तो ऐसा सीधा-उपवास करो, व्रत करो, बारह व्रत लो, पंच महाव्रत लो... ऐई ! सीधा-सट्ट, है अज्ञान ! आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा ने कही हुई बात सन्त-दिगम्बर सन्त आढ़तिया होकर दुनिया को माल देते हैं। माल लेना हो तो लो, वरना माल तो यही है। आहाहा ! खेद है न ! यहाँ दूसरा कहीं खेद का खुलासा किया है... ऐसा कि जरा राग है, वहाँ ऐसा कहा है, इसमें स्पष्टीकरण नहीं है। ऐसा कि मुनि को भी ऐसा क्यों होता है ? अन्यत्र कहीं आया है, आया था, खेद

क्यों होता है ? ये तो मुनि हैं ! आत्मा के आनन्द का अनुभव (प्रचुर वर्तता है) परन्तु जरा विकल्प है। तो... यह क्या करते हैं ? आहा ! प्रभु इस राग का अनुभव करके, राग का वेदन करके (राग से) आत्मा को लाभ होता है, ऐसा क्यों मानते हो ? ऐसे मोह में तुम क्यों नाचते हो ? आहाहा ! आहाहा ! कहो, देवीलालजी ! आहाहा !

मुमुक्षु : करुणारूप खेद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ? करुणा-राग है, परन्तु वहाँ विकल्प आया है और छद्मस्थ है न। वीतराग सर्वज्ञ हो तो कुछ आवे नहीं। इन्हें (साधक) ऐसा जानते हैं कि (राग) भिन्न है, मेरी चीज़ नहीं, आहाहा ! (तथापि) अज्ञानी ऐसा मानता है। ऐसा आत्मा भगवान अन्दर चिदानन्द प्रत्यक्ष विराजता है और जिसकी ज्ञान की पर्याय, प्रगट लक्षण है तो उस प्रगट लक्षण के नमूना से अन्दर जाया जाता है, ऐसा अनुभव ये करते नहीं और इस अकेले राग का अनुभव करते हैं, आश्चर्य ! आहाहा ! भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्य प्रभु अन्दर विराजता है, सद्चिदानन्द प्रभु ज्ञानगंज ! आनन्द का गंज ! प्रभु प्रज्ञा ब्रह्म !—प्रभु आत्मा तो है ज्ञान और आनन्द का पुंज। आहाहा !

उसमें (आत्मा में) राग कैसा ? नवतत्त्व हैं न ! उसमें राग तो पुण्यतत्त्व है तथा (अशुभराग) पापतत्त्व है, भगवान ज्ञायकतत्त्व है। आहाहा ! दूसरे तत्त्व से, दूसरे तत्त्व में मिला देते हैं तो तत्त्व भिन्न नहीं रहते। आहाहा ! व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि भाव, वे कोई जैनधर्म नहीं है, वह तो राग है। आहाहा ! उस राग को अपना मानकर चैतन्य के लक्षण का अनुभव तू क्यों भूल जाता है ? साक्षात् (प्रगट) विराजता है, उसे भूल जाता है और यह क्या ? तेरी चीज़ में नहीं, उसे अपना मानकर तू अनुभव करता है, मिथ्यात्वभाव है, आश्चर्य है ! प्रभु ! तेरी चीज़ पड़ी है, उसे भूलकर (राग का अनुभव करता है) आश्चर्य होता है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। (आहा) क्षणिक विकृत अवस्था को अपनी मानकर त्रिकाली को (निर्मलानन्द को) भूल जाता है, आश्चर्य है ! आहाहा ! ऐसी बातें हैं। यह सन्त-दिगम्बर मुनि कहते हैं। भगवान तीन लोक के नाथ कहते हैं, वह सन्त कहते हैं। आहाहा ! **अहोवत्** है न ? अहो अर्थात् आश्चर्य और वत् अर्थात् खेद ! **अहोवत्** अहो ! आश्चर्य (और) वत् - खेद, ये दो शब्द !

मुमुक्षु : कलश २२२ में खेद का आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : २२२ में है, ठीक! ख्याल में है न! यहाँ इस (खेद शब्द का) स्पष्टीकरण नहीं किया, वहाँ यह स्पष्टीकरण किया है।

कलश–४४

अब, पुनः मोह का प्रतिषेध करते हुए कहते हैं कि 'यदि मोह नाचता है तो नाचो ? तथापि ऐसा ही है' :—

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध–
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः।।४४।।

श्लोकार्थ - [अस्मिन् अनादिनि महति अविवेक-नाट्ये] इस अनादिकालीन महा अविवेक के नाटक में अथवा नाच में [वर्णादिमान् पुद्गलः एव नटति] वर्णादिमान पुद्गल ही नाचता है, [न अन्यः] अन्य कोई नहीं; (अभेद ज्ञान में पुद्गल ही अनेक प्रकार का दिखायी देता है, जीव अनेक प्रकार का नहीं है;) [च] और [अयं जीवः] यह जीव तो [रागादि-पुद्गल-विकार-विरुद्ध-शुद्ध-चैतन्यधातुमय-मूर्तिः] रागादिक पुद्गल-विकारों से विलक्षण, शुद्ध चैतन्यधातुमय मूर्ति है।

भावार्थ - रागादिक चिद्विकार को (-चैतन्यविकारों को) देखकर ऐसा भ्रम नहीं करना कि ये भी चैतन्य ही हैं, क्योंकि चैतन्य की सर्व अवस्थाओं में व्याप्त हों तो चैतन्य के कहलायें। रागादि विकार सर्व अवस्थाओं में व्याप्त नहीं होते—मोक्ष अवस्था में उनका अभाव है और उनका अनुभव भी आकुलतामय दुःखरूप है। इसलिए वे चेतन नहीं, जड़ हैं। चैतन्य का अनुभव निराकुल है, वही जीव का स्वभाव है ऐसा जानना ॥४४॥

कलश - ४४ पर प्रवचन

अब, पुनः मोह का प्रतिषेध करते हुए कहते हैं कि 'यदि मोह नाचता है तो नाचो ?... हम तो आत्मा आनन्दस्वरूप-ज्ञानस्वरूप हैं। आहाहा! कितना आया ? ४४

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः।।४४।।

आहाहा! आहाहा! '**अस्मिन् अनादिनि महति अविवेक-नाट्ये**' अरे रे! **इस अनादिकालीन महा अविवेक के नाटक में अथवा नाच में वर्णादिमान पुद्गल ही नाचता है,** आहाहा! '**न अन्यः**' **अन्य कोई नहीं;...** वर्ण और राग, सब वर्णादिमान पुद्गल हैं, वे नाचते हैं, चार गति में परिणमन करते हैं (उसमें) राग और पुद्गल नाचता है। भगवान-आत्मा तो इस राग और पुद्गल में है नहीं। आहाहा! है ? आत्मा जो आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, वह तो ज्ञानस्वरूप है, वह तो राग और पुद्गल में आता नहीं। तो कहते हैं कि अनादिकाल से यह शरीर, वाणी, मन, पुद्गल जड़ है, वैसे (ही) पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रतादि के भाव भी पुद्गल है तो यह पुद्गल नाचता है तो नाचो! आत्मा उसमें तो आता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

अनादिकाल से महा अविवेक का नाटक... अविवेक का नाटक! आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप प्रभु है, उसे छोड़कर शुभ-अशुभभाव / राग जो दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि का भाव होता है, वह पुद्गल है, आहाहा! वह जीवद्रव्य नहीं। तो वह पुद्गल नाचता है तो नाचो, उसमें आत्मा का क्या आया ? आहाहा! सन्तों की यह वाणी तो देखो! आहाहा!

वर्णादिमान पुद्गल... वर्णादि में रंग, राग और भेद सब ले लेना। **वर्णादिमान पुद्गल ही नाचता है, अन्य कोई नहीं;...** उसमें आत्मा नहीं आया। **(अभेद ज्ञान में पुद्गल ही अनेक प्रकार का दिखाई देता है,...)** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा का-

ज्ञानस्वभाव का अनुभव हुआ-अभेदज्ञान का अनुभव हुआ तो राग आदि पुद्गलरूप दिखाई देते हैं। आहाहा! अनेक प्रकार के दिखाई देते हैं, वह पुद्गल दिखाई देते हैं। भगवान है एक, (वह) अनेक प्रकार नहीं होता। आहाहा! भगवान अर्थात् यह आत्मा, हों! वह एकरूप ज्ञानानन्दस्वभाव से विराजमान है। उससे विरुद्ध रागादिभाव दया, दान, व्रत, काम, क्रोधादि भाव, वह पुद्गल है। आहाहा! **(अभेद ज्ञान में पुद्गल ही अनेक प्रकार का दिखायी देता है,...)** ऐसा कहा न! आहाहा! जीव अनेक प्रकार का नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा सद्चिदानन्द प्रभु एकरूप अभेद है। उसमें रागादि के भेद दिखाई नहीं देते। आहा! ऐसी बातें, पकड़ना कठिन पड़े अभी। यह उपदेश ही विरल हो गया है। आहाहा! 'विरले जानैं तत्त्व को, विरले सुनते कोई' विरले जाने कोई, विरले श्रद्धे कोई, (विरले समझे कोई।) आहाहा! **(जीव अनेक प्रकार का नहीं है;) और यह जीव तो रागादिक पुद्गल-विकारों से विलक्षण,...** है। चैतन्यतत्त्व भगवान आत्मा-ज्ञायक -स्वभावभाव यह प्रभु, राग आदि विकाररूप कभी नहीं होता। आहाहा! पुद्गल विकार से विलक्षण है, शुद्धचैतन्य की मूर्ति-चैतन्यधातुमय है। प्रभु! शुद्ध चैतन्यधातु—सहजानन्द प्रभु, वह आत्मा है। यह तो पुद्गल रागादि नाचे तो नाचो, उसमें आत्मा को क्या है?

विशेष आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)